☐ श्री पुष्कर मुनि जी महाराज
[प्रसिद्ध वक्ता एवं राजस्थान केसरी]

जैन सूत्रों के गुरु-गंभीर रहस्यों का उद्घाटन करने वाले भाष्य, ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति और इतिहास के अक्षय कोष हैं।

प्रस्तुत में जैन सूत्रों के भाष्य एवं भाष्यकारों का प्रामाणिक परिचय दिया है अधिकारी विद्वान् श्री पुष्कर मुनिजी ने।

जैन आगमों के—

भाष्य और भाष्यकार

☐

जैन आगम साहित्य ज्ञान-विज्ञान का अक्षय कोश है। उनके गुरु-गंभीर रहस्यों को जानना सहज नहीं है। उन रहस्यों के उद्घाटन के लिए प्रतिभामूर्ति आचार्यों ने समय-समय पर व्याख्याएँ लिखीं। व्याख्या साहित्य में सर्वप्रथम स्थान निर्युक्तियों का है और उसके पश्चात् भाष्य-साहित्य का। निर्युक्तियाँ और भाष्य ये दोनों प्राकृत-भाषा में पद्य बद्ध टीकाएँ हैं। अनेक स्थलों पर मागधी और शौरसेनी के प्रयोग भी दृष्टिगोचर होते हैं। मुख्य छन्द आर्या है। भाष्य साहित्य में अनेक प्राचीन अनुश्रुतियाँ, लौकिक कथाएँ और परम्परागत निर्ग्रन्थों के आचार-विचार की विधियों का प्रतिपादन किया है। भाष्यकारों में जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण और संघदासगणी ये दो प्रमुख हैं। विशेषावश्यक भाष्य और जीतकल्प-भाष्य ये आचार्य जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण की कृतियाँ हैं और बृहत्कल्प लघुभाष्य, पंचकल्प महाभाष्य ये संघदास गणी की रचनाएँ हैं। व्यवहार भाष्य और बृहत्कल्प-बृहद भाष्य के रचयिता कौन आचार्य हैं, इनका निर्णय अभी तक इतिहास कार नही कर सके हैं। विज्ञों का ऐसा अभिमत है कि इन दोनों भाष्यों के रचयिता अन्य आचार्य रहे होंगे। बृहद्भाष्य के रचयिता, बृहत्कल्प चूर्णिकार और बृहत्कल्प विशेष चूर्णिकार के पश्चात् हुए हैं। संभव है कि ये आचार्य हरिभद्र के समकालीन या कुछ पहले रहे हों। व्यवहार भाष्य के रचयिता आचार्य जिनभद्र से पहले होने चाहिए।

जिनभद्रगणी

जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण का जैन-साहित्य में विशिष्ट व गौरवपूर्ण स्थान है। उनकी जन्म-स्थली, माता-पिता आदि के सम्बन्ध में अन्वेषण करने पर भी सामग्री प्राप्त नहीं हो सकी है। विज्ञों की ऐसी धारणा है कि उन्हें अपने जीवन काल में विशिष्ट महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं हुआ था। उनके स्वर्गवास होने के पश्चात् उनके महत्त्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थों को देखकर गुणग्राही आचार्यों ने आचार्य परम्परा में स्थान देना चाहा, किन्तु वास्तविकता न होने से विभिन्न-आचार्यों के विभिन्न मत प्राप्त होते हैं। यहाँ तक कि उनके सम्बन्ध में विरोधी उल्लेख भी मिलते हैं। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि १५वीं १६वीं शताब्दी की रचति पट्टावलियों में उन्हें हरिभद्र सूरि का पट्टधर शिष्य लिखा है। जबकि हरिभद्र सूरि जिनभद्र से सौ वर्ष के बाद में हुए हैं।

विशेषावश्यक भाष्य की एक प्रति शक सं० ५३१ में लिखी हुई वलभी के जैन भण्डार में प्राप्त हुई है, जिससे यह सहज ही ज्ञात होता है कि जिनभद्र का वलभी के साथ अवश्य ही सम्बन्ध रहा होगा।

विविध तीर्थकल्प में आचार्य जिनप्रभ लिखते हैं कि जिनभद्र क्षमाश्रमण ने पन्द्रह दिन तक तप की साधना कर एक देव की आराधना की और उसकी सहायता से दीमकों द्वारा खाये गये महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया[1] इससे यह ज्ञात होता है कि उनका सम्बन्ध मथुरा से भी था।

डा० उमाकान्त प्रेमानन्द शाह को अंकोट्टक—अकोटा गाँव में ऐसी प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं जिन पर यह

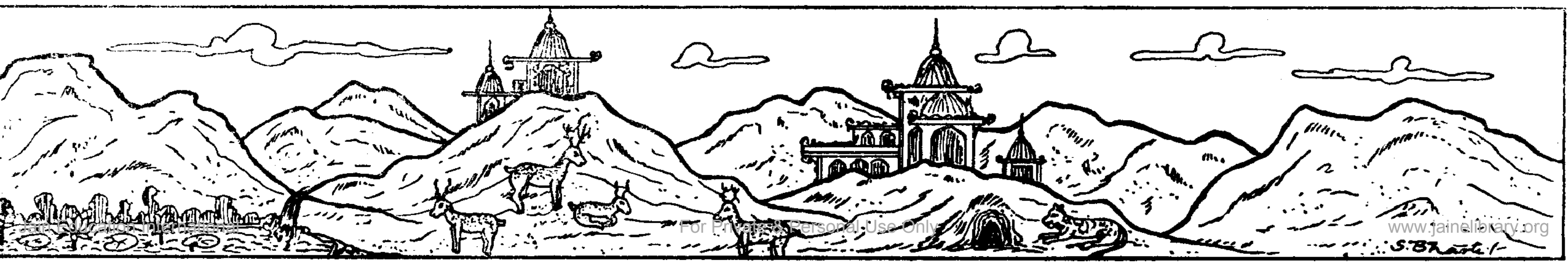

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उट्टङ्कित है—"ओ३म् देवधर्मोयं निवृतिकुले जिनभद्र वाचनाचार्यस्य" एवं "ओ३म् निवृतिकुले जिनभद्र वाचनाचार्यस्य।"[2]

इन लेखों में जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण को निवृत्ति कुल का बताया है और साथ ही उन्हें वाचनाचार्य भी लिखा है। पं० दलसुखभाई मालवणिया का अभिमत है कि "प्रारम्भ में 'वाचक' शब्द शास्त्र विशारद के लिए प्रचलित था परन्तु जब वाचकों में क्षमाश्रमणों की संख्या बढ़ती गई तब 'क्षमा श्रमण' शब्द भी वाचक के पर्याय के रूप में विश्रुत हो गया। अथवा 'क्षमाश्रमण' शब्द आवश्यक सूत्र के सामान्य गुरु के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है अतः संभव है कि शिष्य विद्यागुरु को क्षमाश्रमण के नाम से भी सम्बोधित करते रहे हों, अतः क्षमाश्रमण और वाचक ये पर्यायवाची बन गये। जैन समाज में जब वादियों की प्रतिष्ठा स्थापित हुई तब शास्त्र विशारद के कारण वाचकों को 'वादी' कहा होगा और कालान्तर में वादी वाचक का ही पर्यायवाची बन गया। आचार्य सिद्धसेन को शास्त्र विशारद होने के कारण दिवाकर की पदवी दी गई, अतः वाचक का पर्यायवाची दिवाकर भी है। आचार्य जिनभद्र का युग क्षमाश्रमणों का युग था अतः उनके पश्चात् के लेखकों ने उनके लिए वाचनाचार्य के स्थान पर क्षमाश्रमण शब्द का प्रयोग किया हो।"[3] इस प्रकार वाचक वाचनाचार्य, क्षमाश्रमण आदि शब्द एक ही अर्थ के सूचक हैं।

जिनभद्र क्षमाश्रमण निवृत्ति कुल के थे। निवृत्ति कुल का उद्भव कैसे हुआ? इस सम्बन्ध में पट्टावलियों में लिखा है कि भगवान महावीर के सत्तरहवें पट्ट पर आचार्य वज्रसेन आसीन हुए। उनके पास जिनदत्त (जिनदास) के चार पुत्रों ने आर्हती दीक्षा ग्रहण की। उनके नागेन्द्र, चन्द्र, निवृत्ति और विद्याधर ये चार नाम थे। उन्हीं के नाम पर चार मुख्य कुल हुए।[4]

उपर्युक्त तथ्यों के अतिरिक्त जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण के जीवन के सम्बन्ध में कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती। सिद्धसेन गणी ने जीतकल्प चूर्णि में जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण के गुणों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"जो अनुयोग धर, युगप्रधान, प्रधान ज्ञानियों से बहुमत, सर्वश्रुति और शास्त्र में कुशल तथा दर्शन-ज्ञानोपयोग के मार्ग-दर्शक हैं। जिस प्रकार कमल की मधुर सौरभ से आकर्षित होकर भ्रमर कमल की उपासना करते हैं उसी प्रकार ज्ञानरूप मकरंद के पिपासु मुनि जिनके मुख रूप निर्झर से प्रवाहित ज्ञानरूप अमृत का सर्वदा सेवन करते हैं। स्व-समय तथा पर-समय के आगम, लिपि, गणित, छन्द और शब्दशास्त्रों पर किये गए व्याख्यानों से निर्मित जिनका अनुपम यश-पटह दसों दिशाओं में बज रहा है। जिन्होंने अपनी अनुपम बुद्धि के प्रभाव से ज्ञान, ज्ञानी, हेतु, प्रमाण तथा गणधरवाद का सविशेष विवेचन विशेषावश्यक में ग्रन्थ-निबद्ध किया है। जिन्होंने छेदसूत्रों के अर्थ के आधार पर पुरुष विशेष के पृथक्करण के अनुसार प्रायश्चित की विधि का विधान करने वाले जीतकल्प सूत्र की रचना की है। ऐसे पर-समय के सिद्धान्तों में निपुण संयमशील श्रमणों के मार्ग के अनुगामी और क्षमाश्रमणों में निधानभूत जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण को नमस्कार हो।[5]

इस वर्णन से यह स्पष्ट परिज्ञात होता है कि जिनभद्रगणी आगमों के गंभीर रहस्यों के ज्ञाता थे। परवर्ती अन्य विद्वान आचार्यों ने भी उनके लिए अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है।

पुरातत्त्ववेत्ता मुनि जिनविजय जी ने जैसलमेर भण्डार से प्राप्त विशेषावश्यक भाष्य की प्रति के अन्त में जो दो गाथाएँ हैं उसके आधार से भाष्य का रचनाकाल विक्रम सं० ६६६ माना है।[6] उन गाथाओं का अर्थ है शक संवत ५३१ (विक्रम सं० ६६६) में बलभी में जिस समय शीलादित्य राज्य करता था, उस समय चैत्र शुक्ला पूर्णिमा, बुधवार और स्वाति नक्षत्र में विशेषावश्यक भाष्य की रचना पूर्ण हुई।

पं० दलसुख भाई मालवणिया मुनि जिनविजय जी के कथन से सहमत नहीं हैं। उनका अभिमत है कि उपर्युक्त गाथाओं में रचना विषयक किसी भी प्रकार का उल्लेख नहीं हुआ है। खण्डित अक्षरों को यदि हम किसी मन्दिर विशेष का नाम मान लें तो इन गाथाओं में कोई क्रियापद नहीं रहता। ऐसी स्थिति में इसकी रचना शक सं० ५३१ में हुई, यह निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते। अधिक संभव तो यही लगता है कि उस समय यह प्रति लिखकर मन्दिर को समर्पित की गई हो। चूंकि ये गाथाएँ केवल जैसलमेर की प्रति में ही हैं, अन्य किसी भी प्राचीन प्रतियों में नहीं है। यदि ये गाथाएँ मूलभाष्य की ही होती तो सभी में होनी चाहिए थी। दूसरी बात ये गाथाएँ रचनाकाल सूचक हैं ऐसा माना जाय तो यह भी मानना होगा कि इन गाथाओं की रचना जिनभद्र ने की, तो इन गाथाओं की टीकाएँ भी मिलनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। कोट्याचार्य और मलधारी हेमचन्द्र की विशेषावश्यक की टीकाओं में इन गाथाओं पर टीकाएँ नहीं हैं और न उन टीका ग्रन्थों में ये गाथाएँ ही हैं अतः इन गाथाओं में जो समय निर्दिष्ट किया गया है वह रचना का नहीं किन्तु प्रति लेखन का है।[७]

जेसलमेर स्थित प्रति के आधार पर विशेषावश्यक भाष्य का प्रति लेखन समय शक संवत् ५३१ अर्थात् विक्रम सम्वत् ६६६ मानते हैं तो इसका रचना समय इससे पूर्व का होना चाहिए। विशेषावश्यक भाष्य जिनभद्र की अन्तिम कृति है। उनकी स्वोपज्ञ वृत्ति भी मृत्यु हो जाने से पूर्ण नहीं हो सकी थी। इस प्रकार जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण का उत्तरकाल विक्रम सं० ६५०–६६० के आस-पास रहना चाहिए।

आचार्य जिनभद्र गणी की ९ रचनाएँ उपलब्ध हैं[८]—

(१) विशेषावश्यक भाष्य—प्राकृत पद्य में
(२) विशेषावश्यक भाष्य स्वोपज्ञ वृत्ति—अपूर्ण-संस्कृत गद्य
(३) वृहत्संग्रहणी—प्राकृत पद्य
(४) वृहत्क्षेत्र समास—प्राकृत पद्य
(५) विशेषणवती ,, ,,
(६) जीतकल्प ,, ,,
(७) जीतकल्प भाष्य ,, ,,
(८) अनुयोग द्वार चूर्णि[९] प्राकृत गद्य
(९) ध्यान शतक ,, पद्य

ध्यान शतक के निर्माता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।

विशेषावश्यक भाष्य

हम पहले ही बता चुके हैं कि विशेषावश्यक भाष्य जिनदास गणी की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। यों आवश्यक सूत्र पर तीन भाष्य लिखे गये हैं—(१) मूल भाष्य, (२) भाष्य और (३) विशेषावश्यक भाष्य। प्रथम दो भाष्य बहुत ही संक्षेप में लिखे गये हैं और उनकी बहुत-सी गाथाएँ विशेषावश्यक भाष्य में मिला दी गई हैं। इस प्रकार विशेषावश्यक भाष्य तीनों भाष्यों का प्रतिनिधित्व करता है।

विशेषावश्यक भाष्य एक ऐसा ग्रन्थ रत्न है जिसमें जैन आगमों में वर्णित सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा-विचारणा की गई है। ज्ञानवाद, प्रमाण, आचार-नीति, स्याद्वाद, नयवाद, कर्मवाद प्रभृति सभी विषयों पर विस्तार से विश्लेषण है। सबसे बड़ी विशेषता इस ग्रन्थ की यह है कि जैन-तत्त्वज्ञान का जो विश्लेषण किया गया है उसमें जैन दृष्टि के साथ अन्यान्य दार्शनिक दृष्टियों के साथ भी तुलना की गई है। आगमिक विचारधाराओं का जैसा तर्कपुरस्सर विवेचन प्रस्तुत ग्रन्थ में हुआ है वैसा अन्य ग्रन्थों में देखने को नहीं मिलता। बाद के आचार्यों व लेखकों ने प्रस्तुत भाष्य की सामग्री का खुलकर उपयोग किया है और तर्क पद्धति को भी अपनाया हैं। यह साधिकार कहा जा सकता है—प्रस्तुत भाष्य के पश्चात् रचित जितने भी आगम की व्याख्या करने वाले महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं, उन्होंने किसी न किसी रूप में भाष्य का आधार लिया ही है।

विशेषावश्यक भाष्य में आवश्यक सूत्र की व्याख्या की गई है, किन्तु सम्पूर्ण आवश्यक सूत्र पर व्याख्या न होकर प्रथम अध्ययन सामायिक से सम्बन्धित जो निर्युक्ति की गाथाएं हैं उन्हीं पर विवेचन है। एक अध्ययन पर होने पर भी इसमें ३६०३ गाथाएँ हैं। ग्रन्थ में सर्वत्र आचार्य की प्रबल तर्कशक्ति, अभिव्यक्ति की कुशलता विषय प्रतिपादन की पटुता और व्याख्यान की विदग्धता का सहज ही परिचय प्राप्त होता है। जैन आचार और विचार के उन मूलभूत सभी तत्त्वों का संग्रह है। जहाँ दर्शन की गहनता का सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है वहाँ चारित्र की बारीकियों का भी निरूपण है, इस प्रकार विशेषावश्यक भाष्य जैन तत्त्वज्ञान का एक महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ रत्न है।

जीतकल्प भाष्य

आचार्य जिनभद्र गणी की दूसरी कृति जीतकल्प भाष्य है। इसमें उन्होंने वृहद्कल्प लघुभाष्य, व्यवहार भाष्य,

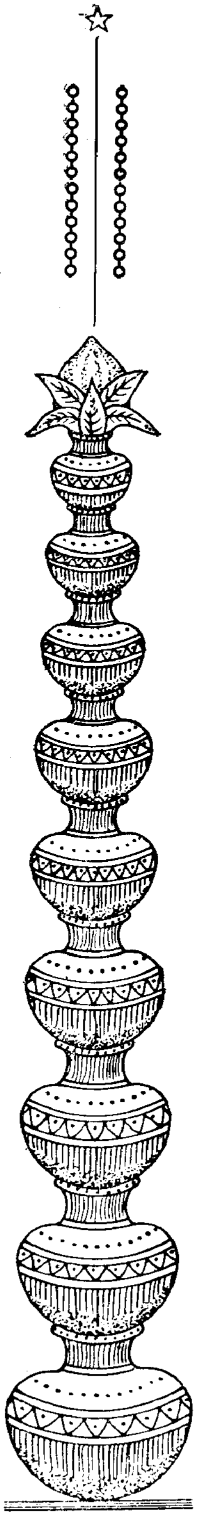

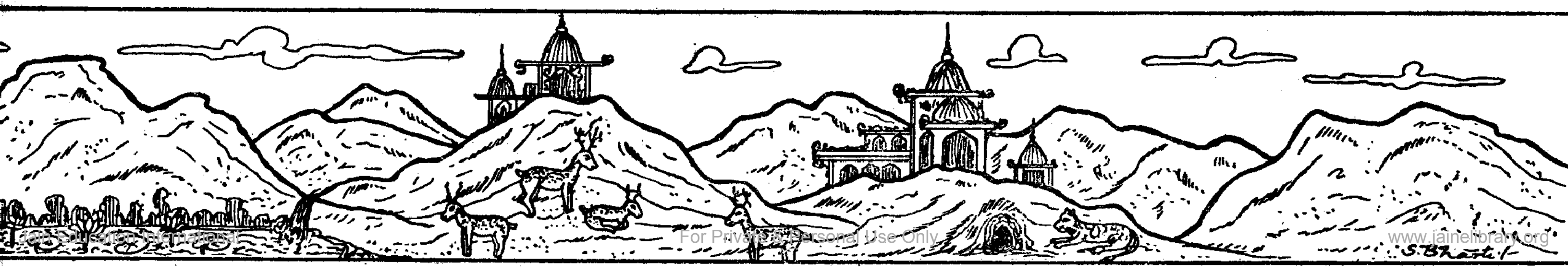

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचकल्प महाभाष्य, पिण्ड निर्युक्त प्रभृति अनेक ग्रन्थों से गाथाएँ उद्धृत की हैं अतः यह एक संग्रह ग्रन्थ है।[10] मुख्य रूप से इसमें प्रायश्चित के विधिविधान हैं। भाष्यकार ने लिखा है—जो पाप का छेद करता है वह पायच्छित-प्रायश्चित है, या प्रायः जिससे चित्त शुद्ध होता है वह पच्छित-प्रायश्चित है।[11] जीत-व्यवहार का विवेचन करते हुए आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत ये पाँच व्यवहार बताये हैं। जीतव्यवहार वह है जो आचार्य परम्परा से प्राप्त है, श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा अनुमत है, और बहुश्रुतों द्वारा सेवित है। इस व्यवहार का आधार परम्परा है आगम नहीं। भाष्यकार ने प्रायश्चित का अठारह, बत्तीस, और छत्तीस स्थानों का वर्णन किया है। प्रायश्चित देने वाले की योग्यता अयोग्यता पर चिन्तन करते हुए लिखा है—प्रायश्चित देने की योग्यता केवली या चतुर्दश पूर्वधर में होती है किन्तु वर्तमान में उनका अभाव होने से कल्प (बृहत्कल्प) प्रकल्प (निशीथ) और व्यवहार के आधार पर प्रायश्चित दिया जा सकता है। चारित्र की विशुद्धि के लिए प्रायश्चित की अनिवार्य आवश्यकता है। प्रायश्चित देते समय दाता के हृदय में दयाभाव की निर्मल स्रोतस्विनी बहनी चाहिए। जिसे प्रायश्चित देना हो उसकी शक्ति-अशक्ति का पूर्ण ध्यान होना चाहिए। आलोचना, प्रतिक्रमण, मिश्र, विवेक व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल, अनवस्थाप्य, और पारांचिक इन दस प्रकार के प्रायश्चित और उनके स्वरूप का विश्लेषण करते हुए अपराध स्थानों का भी वर्णन किया है। यह भी लिखा है कि 'अनवस्थाप्य और पारांचिक प्रायश्चित आचार्य भद्रबाहु तक प्रचलित थे। उसके पश्चात् उनका विच्छेद हो गया।[12]

जीतकल्प भाष्य आचार्य जिनभद्र की जैन आचार-शास्त्र पर एक महत्त्वपूर्ण कृति है इसमें किञ्चित मात्र भी सन्देह नहीं है।

संघदास गणी

द्वितीय भाष्यकार संघदास गणी है। संघदास के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में इतिहासकार मौन है। इनके माता-पिता कौन थे, कहाँ इनकी जन्मस्थली थी और किन आचार्य के पास प्रव्रज्या ग्रहण की आदि कुछ भी जानकारी नहीं मिलती है। आगम प्रभाकर मुनि श्री पुण्यविजय जी म० के अभिमतानुसार संघदास गणी नामक दो आचार्य हुए हैं। एक आचार्य ने बृहत्कल्प-लघुभाष्य और पञ्चकल्प-महाभाष्य लिखा है। दूसरे आचार्य ने वसुदेवहिंडि-प्रथम खण्ड की रचना की है। भाष्यकार संघदास गणी 'क्षमाश्रमण' पद से विभूषित हैं तो वसुदेव हिंडि के रचयिता 'वाचक' पद से अलंकृत हैं। दूसरी बात आचार्य जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण ने अपनी विशेणवती नामक ग्रन्थ में वसुदेव हिंडी नामक ग्रन्थ का अनेक बार उल्लेख किया है और वसुदेव हिंडि में जो ऋषभ देव चरित्र है उनकी गाथाओं का संग्रहणी के रूप में अपने ग्रन्थ में प्रयोग किया है। इससे यह स्पष्ट है वसुदेव हिंडि के प्रथम खण्ड के रचयिता संघदास गणी आचार्य जिनभद्र से पहले हुए हैं।

भाष्यकार संघदास गणी भी आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण से पहले हुए हैं। जब तक अन्य प्रबल साक्ष्य प्राप्त न हों तब तक निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि संघदास गणी एक हुए हैं या दो हुए हैं। पर यह स्पष्ट है। संघदास गणी आगम साहित्य के मर्मज्ञ व छेदसूत्रों के तलस्पर्शी विद्वान थे। उनके जोड़ का और कोई भी छेद सूत्रज्ञ आचार्य आज के विज्ञों की जानकारी में नहीं है। वे जिस विषय को उठाते हैं, उसे उतनी गहराई में ले जाते हैं कि साधारण विद्वानों की कल्पना भी वहाँ नहीं पहुँच पाती।

बृहत्कल्प-लघुभाष्य

बृहत्कल्प-लघुभाष्य संघदास गणी की महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें बृहत्कल्प सूत्र के पदों का सविस्तृत विवेचन है। लघुभाष्य होने पर भी इसकी गाथा संख्या ६४६० है। यह छह उद्देश्यों में विभक्त है। इसके अतिरिक्त भाष्य के प्रारम्भ में एक विस्तृत पीठिका है, जिसकी गाथा संख्या ८०५ है। प्रस्तुत भाष्य में भारत की महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक सामग्री का भी अङ्कन किया गया है। डा० मोतीचन्द्र ने इस भाष्य की सामग्री को लेकर अपनी पुस्तक 'सार्थवाह' में 'यात्री और सार्थवाह' का परिचय प्रदान करने के लिए उपयोग किया है। प्राचीन भारतीय संस्कृति की दृष्टि से इस भाष्य का विशेष महत्त्व है। जैन श्रमणों के आचार का सूक्ष्म एवं तर्क-पुरस्सर विवेचन इस भाष्य की प्रमुख विशेषता है।

पीठिका में मंगलवाद, ज्ञानपंचक, अनुयोग, कल्प, व्यवहार, प्रभृति विषयों पर प्रकाश डाला गया है। प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उद्देश्य की व्याख्या में तालवृक्ष से सम्बन्धित नाना प्रकार के दोष और प्रायश्चित, ताल प्रलम्ब के ग्रहण सम्बन्धी अपवाद निर्ग्रन्थ-निर्ग्रन्थियों के देशान्तर गमन के कारण और उसकी विधि, श्रमणों की बीमारी के विधि-विधान, वैद्यों के प्रकार, दुष्काल आदि विशेष परिस्थिति में श्रमण-श्रमणियों के एक-दूसरे के अवगृहीत क्षेत्र में रहने की विधि, ग्राम, नगर, खेड़, कर्बटक, मडम्बन, पत्तन, आकर, द्रोणमुख, निगम, राजधानी, आश्रम, निवेश, संबाध, घोष, अंशिका, पुटभेदन, शंकर आदि पदों का विवेचन किया गया है। नक्षत्रमास, चन्द्रमास, ऋतुमास, आदित्य मास और अभिवर्धित मास का वर्णन है। जिनकल्पिक और स्थविरकल्पिक की क्रियाएँ, समवसरण, तीर्थंकर, गणधर, आहारक शरीरी, अनुत्तर देव, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि की शुभ और अशुभ कर्म प्रकृतियाँ, तीर्थंकर की भाषा का विभिन्न भाषा में परिणमन, आपण-गृह रथ्यामुख, शृङ्गाटक, चतुष्क, चत्वर, अन्तरापण, आदि पदों पर विवेचन किया गया है और उन स्थानों पर बने हुए निर्ग्रन्थियों को जिन दोषों के लगने की संभावनाएँ हैं उनकी चर्चा की है।

भाष्यकार ने बारह प्रकार के ग्रामों का उल्लेख किया है (१) उत्तानकमल्लक, (२) अवाङ्मुखमल्लक, (३) सम्पुटकमल्लक, (४) उत्तानकखण्डमल्लक, (५) अवाङ्मुखखण्डमल्लक, (६) सम्पुटखण्डमल्लक, (७) भिति, (८) पडालि, (९) बलभि (१०) अक्षाटक, (११) रूपक, (१२) काश्यपक।

तीर्थंकर, गणधर, और केवली के समय ही जिनकल्पिक होते हैं। जिनकल्पिक की समाचारी का सत्ताइस द्वारों में वर्णन किया है—(१) श्रुत (२) संहनन, (३) उपसर्ग, (४) आतंक, (५) वेदना, (६) कतिजन, (७) स्थंडिल (८) वसति, (९) कियाच्चिर, (१०) उच्चार, (११) प्रस्रवण, (१२) अवकाश, (१३) तृणफलक, (१४) संरक्षणता, (१५) संस्थापनता, (१६) प्राभृतिका, (१७) अग्नि, (१८) दीप, (१९) अवधान, (२०) वत्स्यथ, (२१) भिक्षाचर्या, (२२) पानक, (२३) लेपालेप, (२४) अलेप, (२५) आचाम्ल, (२६) प्रतिमा, (२७) मासकल्प।

स्थविर कल्पिक की प्रव्रज्या, शिक्षा, अर्थग्रहण, अनियतवास, और निष्पत्ति जिनकल्पिक के सदृश ही है।

विहार की चर्चा करते हुए, विहार का समय, विहार करने के पूर्वगच्छ के निवास एवं निर्वाह योग्य क्षेत्र का परीक्षण, उत्सर्ग और अपवाद की दृष्टि से योग्य-अयोग्य क्षेत्र प्रत्युपेक्षकों का निर्वाचन, क्षेत्र की प्रति लेखना के लिए किस प्रकार गमनागमन करना चाहिए, विहार-मार्ग, एवं स्थंडिल भूमि, जल, विश्राम स्थान, भिक्षा, वसति, उपद्रव आदि की परीक्षा प्रतिलेखनीय क्षेत्र में प्रवेश करने की विधि, भिक्षा के द्वारा उस क्षेत्र के निवासियों के मानस की परीक्षा, भिक्षा, औषध आदि सुगम व कठिनता से मिलने का ज्ञान, विहार करने से पहले वसति के स्वामी की अनुमति, विहार करते समय शुभ-शकुन देखना, आदि।

स्थविर कल्पिकों की समाचारी में निम्न बातों पर प्रकाश डाला है—(१) प्रतिलेखना—वस्त्र आदि के प्रति लेखना का समय, प्रति-लेखना के दोष और प्रायःश्चित, (२) निष्क्रमण—उपाश्रय से बाहर निकलने का समय, (३) प्राभृतिका—गृहस्थ के लिए जो मकान तैयार किया है उसमें रहना चाहिए या नहीं रहना चाहिए। (४) भिक्षा के लेने का समय, और भिक्षा सम्बन्धी आवश्यक वस्तुएँ, (५) कल्पकरण—पात्र साफ करने की विधि, लेपकृत और अलेपकृत पात्र, पात्र-लेप से लाभ। (६) गच्छशतिकादि—आधाकर्मिक, स्वगृहयतिमिश्र, स्वगृह पाषण्ड मिश्र, यावदर्थिक मिश्र, क्रीतकृत, पूतिकर्मिक, और आत्मार्थकृत। (७) अनुयान-रथ यात्रा का वर्णन और उस सम्बन्धी दोष। (८) पुरःकर्म-भिक्षा लेने से पहले सचित्त जल से हाथ आदि धोने से लगने वाला दोष, (९) ग्लान-रूग्ण सन्त की सेवा से होने वाली निर्जरा, उसके लिए पथ्यापथ्य की गवेषणा, वैद्य के पास चिकित्सा के लिए जाने की विधि, उनके साथ वार्तालाप, आदि किस प्रकार करना। रुग्ण साधु को निर्दयता-पूर्वक उपाश्रय आदि में छोड़कर चले जाने वाले आचार्य को लगने वाले दोष और उनका प्रायश्चित (१०) गच्छ प्रतिबद्ध यथालंदिक-वाचना आदि कारणों से गच्छ से सम्बन्ध रखने वाले यथालंदिक कल्पधारियों के साथ बन्दन आदि व्यवहार (११) उपरिदोष—ऋतुबद्ध काल से अतिरिक्त समय में एक क्षेत्र में, एक मास से अधिक रहने से लगने वाले दोष। (१२) अपवाद—एक मास से अधिक रहने के आपवादिक कारण, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों के विहार का विस्तृत वर्णन है।

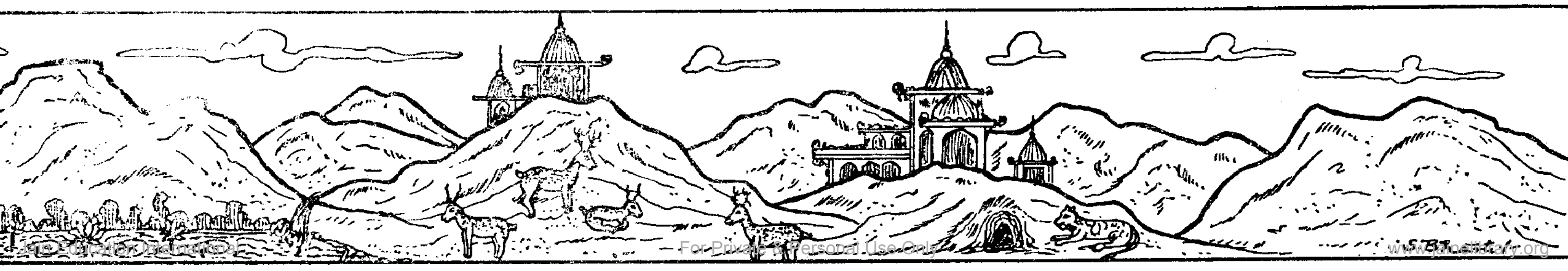

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्य में कहीं-कहीं पर सुभाषित भी दिखाई देते हैं—

कत्थ व न जलइ अग्गी, कत्थ व चंदो न पायडो होइ।
कत्थ वरलक्खागधरा, न पायडा होंति सप्पुरिसा ॥
उदए न जलइ अग्गी, अब्भच्छिन्नो न दीसइ चंदो।
मुक्खेसु महाभागा, बिज्जापुरिसो न मायंति ॥

अग्नि कहाँ प्रकाश मान नहीं होती ? चन्द्रमा कहाँ प्रकाश नहीं करता ? शुभ लक्षण के धारक सत्पुरुष कहाँ प्रकट नहीं होते ?

अग्नि जल में बुझ जाती है, चन्द्रमा मेघाच्छादित आकाश में दिखाई नहीं देता और विद्या सम्पन्न पुरुष मूर्खों की सभा में शोभा को प्राप्त नहीं होते।

वर्षाकाल में गमन करने से वृक्ष की शाखा आदि का सिर पर गिर जाने से, कीचड़ से पैर फिसल जाने, नदी में बह जाने, कांटा लग जाने आदि का भय रहता है, इसलिए निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थिनियों को वर्षाकाल में गमन करने का निषेध है। विरुद्धराज्य में संक्रमण करने से बन्द बन्ध, आदि का भय रहता है। रात्रि या विकाल में बिहार करने से गड्डे आदि में गिरने, साँप, कुत्ते से काटे जाने, बैल से मारे जाने, या काँटा आदि के लग जाने का भय रहता है। प्रस्तुत प्रसंग पर कालोदाई नाम के भिक्षु की कथा दी है। वह भिक्षु रात्रि के समय किसी ब्राह्मणी के घर भिक्षा मांगने गया था। वह गर्भवती थी। अन्धेरे से ब्राह्मणी को कील दिखाई नहीं दी, कील पर गिर जाने से उसकी मृत्यु हो गई।

सदा जागृत रहने का उपदेश दिया है कि हे मनुष्यो ! सदा जागृत रहो। जागृत मनुष्य की बुद्धि का विकास होता है जो जागता है वह सदा धन्य है—

जागरह नरा ! णिच्चं, जागरमाणस्स बड्ढते बुद्धि।
जो सुवति ण सो धण्णं, जो जग्गति सो सया धण्णो ॥

शील और लज्जा को स्त्रियों का भूषण कहा है। हार आदि आभूषणों से स्त्री का शरीर विभूषित नहीं होता। उसका भूषण तो शील और लज्जा ही है। सभा में संस्कार युक्त असाधुवादिनी वाणी प्रशस्त नहीं कही जा सकती।

ण भूसणं भूसयते सरीरं, विभूसणं सीलहिरी य इत्थिए।
गिरा हि संखारजुया वि संसती, अपेसला होइ असाहुवादिणी ॥

जिन शासन का सार बताते हुए लिखा है जिस बात की अपने लिए इच्छा करते हो, उसकी दूसरे के लिए भी इच्छा करो, और जो बात अपने लिए नहीं चाहते हो उसे दूसरे के लिए भी न चाहो—यही जिन शासन है—

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च ण इच्छसि अप्पणतो।
तं इच्छ परस्स वि या, एत्तियगं जिणसासणयं ॥

विस्तार भय से भाष्य में आई हुई सभी बातों पर प्रकाश नहीं डाल सके हैं। किन्तु भारतीय साहित्य में प्रस्तुत भाष्य का महत्त्वपूर्ण व अनूठा स्थान है।

पञ्चकल्प महाभाष्य

आचार्य संघदासगणी की द्वितीय कृति पञ्चकल्प महाभाष्य है, जो पञ्चकल्प निर्युक्ति के विवेचन के रूप में है। इसमें कुल २६५५ गाथाएँ हैं, जिसमें भाष्य की २५७४ गाथाएँ हैं। इसमें पाँच प्रकार के कल्प का संक्षिप्त वर्णन है, फिर उसके छह, सात, दस, बीस, और बयालीस भेद किये गये हैं। पहला कल्प-मनुज जीव कल्प छह प्रकार का है—प्रव्राजन, मुंडन, शिक्षण उपस्थ, भोग, और संवसन,। जाति, कुल, रूप और विनय सम्पन्न व्यक्ति ही प्रव्रज्या के योग्य है। बाल, वृद्ध, नपुंसक, जड़, क्लीब, रोगी स्तेन, राजापकारी, उन्मन्त, अदर्शी, दास दुष्ट, मूढ़, अज्ञानी, जुंगित,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भयभीत, पलायित, निष्कासित, गर्भिणी, बालवत्सास्त्री—ये बीस प्रकार के व्यक्ति प्रव्रज्या के अयोग्य है। क्षेत्रकल्प की चर्चा में साढ़े पच्चीस देशों को आर्य क्षेत्र कहा है जहाँ पर श्रमण विचरण कर सकते हैं। उन जनपदों व राजधानियों का नाम भी बताया है।

द्वितीय कल्प के सात भेद हैं—स्थितकल्प, अस्थितकल्प, जिनकल्प, स्थविरकल्प, लिंगकल्प, उपधिकल्प और संभोगकल्प,।

तृतीय कल्प के दस भेद हैं—कल्प, प्रकल्प, विकल्प, संकल्प, उपकल्प, अनुकल्प, उत्कल्प, अकल्प, दुष्कल्प, और सुकल्प।

चतुर्थ कल्प के बीस भेद हैं—नामकल्प, स्थापनाकल्प, द्रव्यकल्प, क्षेत्रकल्प, कालकल्प, दर्शनकल्प, श्रुतकल्प, अध्ययनकल्प, चारित्रकल्प, आदि।

पञ्चम कल्प के द्रव्य, भाव, तदुभयकरण, विरमण, सदाधार, निर्वेश, अन्तर, नयांतर, स्थित, अस्थित, स्थान आदि बयालीस भेद है।

इस प्रकार पाँच कल्पों का वर्णन प्रस्तुत भाष्य में हुआ है।

निशीथ भाष्य

निशीथ भाष्य के रचयिता भी संघदासगणी माने जाते थे। उसकी अनेक गाथाएँ वृहत्कल्प भाष्य और व्यवहार भाष्य से मिलती है। भाष्य में अनेक सरस लौकिक कथाएँ भी हैं। श्रमणों के आचार-विचार सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों का प्रतिपादन किया है। जैसे पुलिंद आदि अनार्य जंगल में जाते हुए श्रमणों को आर्य समझकर मार देते थे। सार्थवाह व्यापार के लिए दूर-दूर देशों में जाते थे। अनेक प्रकार के सिक्के उस युग में प्रचलित थे। इसमें वृहत्कल्प नन्दिसूत्र, सिद्धसेन और गोविन्द-वाचक का उल्लेख है।

व्यवहार भाष्य

हम पहले ही बता चुके हैं कि व्यवहार भाष्य के रचयिता का नाम अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है। वृहत्कल्प भाष्य के समान ही प्रस्तुत भाष्य में भी श्रमण-श्रमणियों के आचार की चर्चा है। सर्वप्रथम पीठिका में व्यवहार, व्यवहारी एवं व्यवहर्तव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। व्यवहार में दोष लगने की दृष्टि से प्रायश्चित्त का अर्थ, भेद, निमित्त आदि दृष्टियों से विवेचन किया है। विवेचन करते हुए अनेक दृष्टान्त भी दिये हैं। उसके पश्चात् भिक्षु, मास, परिहार, स्थान, प्रतिसेवना, आलोचना आदि पदों पर निक्षेपपूर्वक व्याख्यान किया है। आधाकर्म से सम्बन्धित अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार के लिए अलग-अलग प्रायश्चित्त का विधान है। प्रायश्चित्त से मूलगुण और उत्तर गुण दोनों की विशुद्धि होती है।

प्रायश्चित्त के योग्य पुरुष चार प्रकार के होते हैं—**उभयतर**—जो स्वयं तप करता हुआ दूसरों की भी सेवा कर सकता है। **आत्मतर**—जो केवल तप ही कर सकता है, **परतर**—जो केवल सेवा ही कर सकता है। **अन्यतर**—जो तप और सेवा दोनों में से किसी एक समय में एक का ही सेवन कर सकता है।

शिथिलता के कारण गच्छ का परित्याग कर पुनः गच्छ में सम्मिलित होने के लिए विविध प्रायश्चितों का विधान किया है और पार्श्वस्थ, यथाच्छन्द, कुशील, अनसन्न एवं संसक्त के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला है।

भाष्यकार ने साधुओं के विहार की चर्चा करते हुए एकाकी विहार का निषेध किया है और उनके लगने वाले दोषों का निरूपण किया है।

विविध प्रकार के तपस्वी व रूग्ण व्यक्तियों की सेवा का विधान करते हुए क्षिप्तचित्त और दीप्तचित्त श्रमणों की सेवा करने की मनोवैज्ञानिक पद्धति पर प्रकाश डाला है। क्षिप्तचित होने के राग, भय और अपमान ये तीन कारण हैं। दीप्तचित होने का मुख्य कारण सम्मान है। विशेष सम्मान होने से उसमें मद पैदा है। दुर्जय शत्रुओं पर विजय वैजयन्ती फहराने के मद से उन्मत्त होकर वह दीप्तचित्त हो जाता है। क्षिप्तचित्त और दीप्तचित्त में मुख्य अन्तर यह होता है, क्षिप्तचित्त प्रायः मौन रहता है और दीप्तचित्त बोलता रहता है।

भाष्यकार ने गणावच्छेदक, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर, प्रवर्तिनी आदि पदवियों के धारण करने वाले की योग्यता पर चिन्तन किया है। जो एकादशांग के ज्ञाता हैं, नवम पूर्व के ज्ञाता हैं, कृतयोगी हैं, बहुश्रुत हैं,

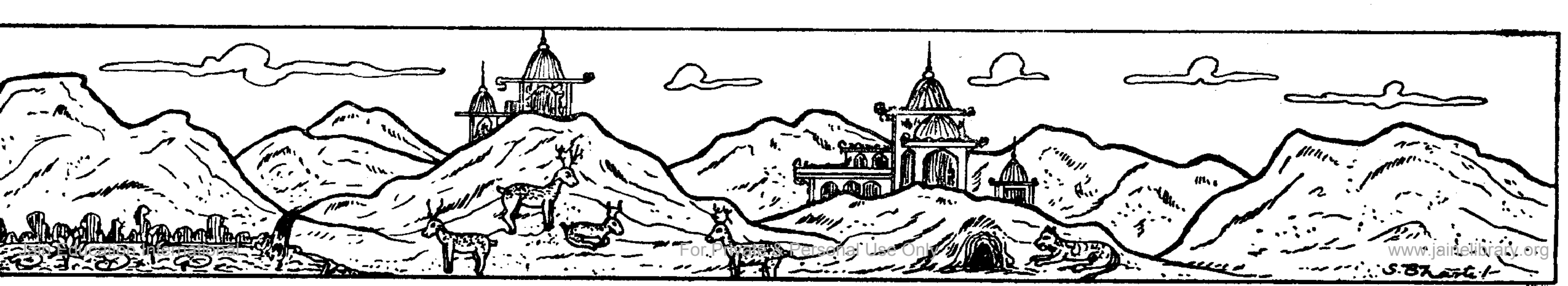

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बह्वागम हैं, सूत्रार्थ विशारद हैं, धीर हैं, श्रुत निघर्ष हैं, महाजन हैं वे ही आचार्य आदि पदवियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

साधुओं के विहार सम्बन्धी नियमों पर चिन्तन करते हुए कहा है—आचार्य को कितने सन्तों के साथ रहना चाहिए। वर्षाकाल में निम्नलिखित स्थान श्रेष्ठ बताये गये हैं—जहाँ अधिक कीचड़ न हो, द्वीन्द्रियादि जीवों की बहुलता न हो, प्रासुक भूमि हो, रहने योग्य दो तीन बस्तियाँ हों, गोरस की प्रचुरता हो, बहुत लोग रहते हों, कोई वैद्य हो, औषधियाँ प्राप्त होती हों, धान्य की प्रचुरता हो, राजा सम्यक् प्रकार से प्रजा को पालता हो, पाखण्डी साधु कम रहते हों, भिक्षा सुलभ हो और स्वाध्याय में कोई विघ्न न हो। जहाँ पर कुत्ते अधिक हों वहाँ पर साधु को विहार नहीं करना चाहिए।

जाति-जुंगित, कर्म-जुंगित, और शिल्प-जुंगित ये तीन प्रकार के हीन लोग बताये हैं। जाति-जुंगितों में पाण, डोंब, किणिक और श्वपच तथा कर्म-जुंगितों में पोषक, संवर-शोधक, नट, लेख, व्याध, मछुए, रजक, और वागुरिक शिल्प-जुंगितों में पट्टकार और नापितों का उल्लेख है।

आर्यरक्षित, आर्य कालक, राजा सातवाहन, प्रद्योत, मुरुण्ड, चाणक्य, चिलात पुत्र, अवन्ति सुकुमाल, रोहिणेय आदि की कथाएँ भी इसमें आई हैं। आर्य समुद्र, आर्यमगु का भी वर्णन है। पाँच प्रकार के व्यवहार, बालदीक्षा की विधि, दस प्रकार की सेना आदि पर भी विवेचन किया है।

ओघ निर्युक्ति—लघु भाष्य

व्यवहार भाष्य के समान ओघनिर्युक्ति लघुभाष्य के कर्ता का नाम नहीं मिलता है। ओघनिर्युक्ति लघुभाष्य की ३२२ गाथाएँ हैं। ओघ, पिण्ड, व्रत, श्रमणधर्म, संयम, वैयावृत्य, गुप्ति, तप, समिति, भावना, प्रतिमा, इन्द्रिय निरोध, प्रतिलेखना, अभिग्रह अनुयोग, कायोत्सर्ग, औपघातिक, उपकरण आदि विषयों पर संक्षेप में विवेचन है। इसके वृहद्भाष्य में विस्तार से विवेचन है।

ओघनिर्युक्ति भाष्य

ओघनिर्युक्ति वृहद्भाष्य की एक हस्तलिखित प्रति मुनि श्री पुण्यविजयजीय के संग्रह में थी, जिसमें २५१७ गाथाएँ थीं। सभी गाथाएँ भाष्य की नहीं किन्तु उसमें निर्युक्ति की गाथाएँ भी सम्मिलित हैं। निर्युक्ति की गाथाओं के विवेचन के रूप में भाष्य का निर्माण हुआ है। भाष्य में कहीं पर भी भाष्यकार के नाम का उल्लेख नहीं हुआ है।

पिण्डनिर्युक्ति भाष्य

पिण्डनिर्युक्ति भाष्य के रचयिता का भी नाम प्राप्त नहीं होता है। इसमें ४६ गाथाएँ हैं। 'गौण' शब्द की व्युत्पत्ति, पिण्ड का स्वरूप, लौकिक और सामयिक की तुलना, सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना के रूप में पिण्ड स्थापना के दो भेद हैं। पिण्ड निक्षेप और वातकाय, आधाकर्म का स्वरूप, अधःकर्मता हेतु विभागौद्देशिक के भेद, मिश्रजात का स्वरूप, स्वस्थान के स्थान स्वस्थान, भाजनस्वस्थान, आदि भेद, सूक्ष्म प्राभृतिका के दो भेद-अपसर्पण और उत्सर्पण। विशोधि और अविशोधि की कोटियाँ। अदृश्य होने का चूर्ण और दो क्षुल्लक भिक्षुओं की कथा है।

उत्तराध्ययन भाष्य

उत्तराध्ययन भाष्य स्वतन्त्र रूप से नहीं मिलता। शान्तिसूरि की प्राकृत टीका में भाष्य की गाथाएँ प्राप्त होती हैं। वे केवल ४५ हैं। ज्ञात होता है अन्य भाष्यों की गाथाओं के समान प्रस्तुत भाष्य की गाथाएँ भी निर्युक्ति के साथ मिल गई हैं। इनमें बोटिक की उत्पत्ति, पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक आदि के स्वरूप का विश्लेषण किया गया है।

दशवैकालिक भाष्य

दशवैकालिक भाष्य की ६३ गाथाएँ हैं, जिसका उल्लेख हरिभद्रिया वृत्ति में है। हरिभद्र ने जिन गाथाओं को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाष्यगत मानी हैं, वे चूर्णि में हैं इससे जान पड़ता है कि भाष्यकार चूर्णिकार से पूर्ववर्ती हैं। इसमें हेतु विशुद्धि, प्रत्यक्ष-परोक्ष तथा मूलगुण और उत्तर गुणों का प्रतिपादन है। अनेक प्रमाणों से जीव की सिद्धि की गई है।

इस प्रकार आवश्यक, जीतकल्प, बृहत्कल्प, पंचकल्प, निशीथ, व्यवहार, ओघनिर्युक्ति, पिण्ड निर्युक्ति, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक पर भाष्य प्राप्त होते हैं जिन पर हमने बहुत ही संक्षेप में चिन्तन किया है। इनमें से कुछ भाष्य प्रकाशित हो गये और कुछ भाष्य अभी तक अप्रकाशित हैं। भाष्य साहित्य में जो भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म और दर्शन व मनोविज्ञान का जो विश्लेषण हुआ है वह अपूर्व है अनूठा है।[१३]

---

१ विविधतीर्थकल्प, पृ० १६
२ जैन सत्यप्रकाश अंक १६६
३ गणधरवाद प्रस्तावना, पृ० ३१
४ (क) नागेन्द्र, चन्द्र, निर्वृत्ति, विद्याधराख्यान चतुरः सकुटुम्बान्, इभ्यपुत्रान्- प्रव्राजितकान। तेभ्यश्च स्व-स्व नामाङ्कितानि चत्वारि कुलानि संजातानीति।—तपागच्छ पट्टावली भाग १, स्वोपज्ञवृत्ति (पं० कल्याण विजय जी, पृ० ७१)
(ख) जैन साहित्य संशोधक खण्ड २, अ० ४, पृ० १०
(ग) जैन गुर्जर कविओ, भाग २, पृ० ६६६
५ जीतकल्प चूर्णि गा० ५–१०
६ पंचसता इगतीसा सगणिव कालस्स वट्टमाणस्स।
तो चेत्तपुण्णिमाए बुद्धदिण सातिमि णक्खते॥
रज्जे णु पासणपरे सी (लाइ) धम्मिणर वरिन्दम्मि।
वलंभीणगरीए इयं महवि···मि जिणभवणे॥
७ गणधरवाद प्रस्तावना, पृ० ३२–३३
८ जैन-साहित्य का बृहद्इतिहास भाग ३, पृ० १३५
प्रकाशक—पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैनाश्रम वाराणसी ५
९ प्रस्तुत चूर्णि जिनदास की चूर्णि व हरिभद्र की वृत्ति में अक्षरशः उद्धृत की गई।
१० जीतकल्प सूत्र—स्वोपज्ञभाष्य सहित, प्रस्तावना, पृ० ४–५
११ जीतकल्पभाष्य गा० १–५
१२ जीतकल्पभाष्य गा० २५८६–२५८७
१३ विशेषावश्यक भाष्य, जीतकल्प भाष्य, बृहद् लघुभाष्य व्यवहार भाष्य, ओघनिर्युक्ति लघुभाष्य, पिण्ड निर्युक्ति भाष्य, निशीथ भाष्य ये प्रकाशित हो गये हैं।

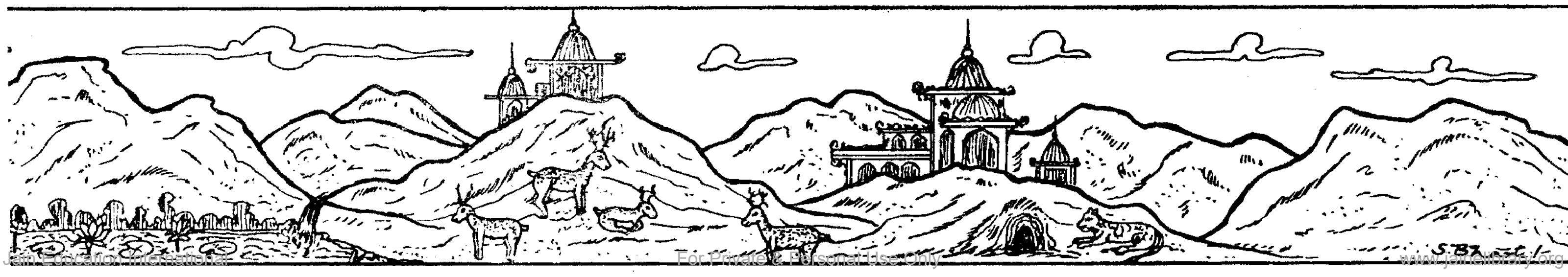

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org